नानेशवाणी - 18

किं जीवनम्

(पावस प्रवचन भाग-2)

आचार्य श्री नानेश

©

राग वगक रहे भानु सगाना

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

नानेशवाणी भाग - 18

किं जीवनम्

आचार्य श्री नानेश

प्रथम संस्करण : अक्टूबर 2002, 1100 प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण : सितम्बर 2008, 1100 प्रतियाँ
तृतीय संस्करण : सितम्बर 2017, 1100 प्रतियाँ
चतुर्थ संस्करण : अगस्त 2019, 1100 प्रतियाँ

मूल्य : 80/-

प्रकाशक :

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
सम्यक् भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन बी.एड. कॉलेज के सामने, नोखा रोड,
गंगाशहर-बीकानेर - 334401 (राज.) दूरभाष : 0151-2270361
visit us : www.shriabsjainsangh.com
e-mail : absjsbkr@yahoo.co.in

मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष 9314902474/75

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युगपुरुष समता विभूति आचार्यश्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों में से एक रहे जिन्होंने अपने कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखायी जिस पर चलकर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष पथ की अधिकारिणी बन सकती हैं। यद्यपि आचार्यश्री नानेश के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है लेकिन उनके द्वारा रचित साहित्य के रूप में हमारे पास एक बहुत बड़ी निधि उपलब्ध है। निश्चित ही आचार्यश्री नानेश ने अपने विचारों से सम्पूर्ण समाज में जन चेतना की जो रश्मियाँ प्रवाहित की हैं वे युगों-युगों तक जनमानस का पथ प्रदर्शित करती रहेंगी।

आचार्यश्री नानेश का यह दिव्य साहित्य जन-जन तक पहुँचे एवं सर्व सुलभ हो इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने इन अनमोल साहित्यिक धरोहर को नानेशवाणी पुस्तक श्रृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय लिया। आज उन्हीं सुप्रयासों का सुफल है कि नानेशवाणी भाग 1 से 52 तक प्रकाशित हो सकी है।

समय परिवर्तन के साथ संघ ने नानेशवाणी के प्रकाशन को नवीन स्वरूप देने का निर्णय लिया। उसी के अनुरूप उपरोक्त पुस्तक को पूर्व की अपेक्षा और अधिक श्रेष्ठ स्वरूप देने का प्रयास किया गया है ताकि इस पुस्तक की महत्ता के साथ आवरण सज्जा में और अधिक निखार आ सके। इसी क्रम में नानेशवाणी भाग - 18 **'किं जीवनम्'** का चतुर्थ संस्करण आपके हाथों में है।

मैं संघ एवं अपनी ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगी बने समस्त आत्मीयजनों का आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता जिनके सहयोग से ही यह भागीरथी कार्य सम्पन्न हो सका। सम्पादन में आचार्य-प्रवर के मूल भावों को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। अज्ञानवश यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उनके लिए हम हृदय से क्षमाप्रार्थी हैं।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुद्गतक '**किं जीवनम्**' नानेशवाणी भाग- 18 के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी

अशोक कुमार, जसकरण, राजेन्द्र कुमार, कमल चंद, संदीप
हितेष सुराणा परिवार

गंगाशहर/बैंगलोर

अनुक्रमणिका

अपने से पहचान 7
संस्कारित जीवन 18
जीवन का स्वरूप 35
जीवन का आदर्श 48
अनन्त ज्योतिर्मय जीवन 65
आत्मा धर्म 84
सुख अमृत और उल्लास 102
रमण करें अपने आत्मारान में 118
वनस्पतियों का आत्मिक रहस्य 136
ध्वजा नहीं, ध्वजा के स्तंभ बनें 149
जरूरी है अन्तरावलोकन 165
चिन्तामणि सा पारस जीवन 185
आध्यात्मिक स्वतन्त्रता 202
पति के रूप में प्रभु सम्बन्धों की परिणति 218
आन्तरिक प्रीति 231
अपने से पहचान 243
समता का धरातल 257
समता : भगवान् और इन्सान की 270
निष्कपट पूजा का फल 283

समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए

राग द्वेष उत्पन्न करने वाले पदार्थों के प्रति समता उपेक्षाभाव रखते हुए आत्मा को सदा प्रफुल्लित रखना चाहिए।

- आचारांग सूत्र

❖ ❖ ❖

अप्पा सो परमप्पा

जय जय भगवान,जय जय भगवान।
अजर अमर अखिलेश निरंजन, जय श्री सिद्ध भगवान।जय..
अगम अगोचर तू अविनाशी
निराकार निर्भय सुखराशी।
निर्विकल्प निर्लेप निरामय निष्कलंक निष्काम। जय जय.।

यह परमात्मा की प्रार्थना है। इस विश्व में प्रत्येक भव्य प्राणी के लिए प्रभुपद चरम आदर्श है। मानव को किस रूप में बनना है और वास्तविक मानव की सार्थकता किस रूप में है - इस बात को समझने के लिए किस दिव्य आदर्श की आवश्यकता है और वह दिव्य आदर्श क्या है, जिसमें किसी भी प्रकार का कलंक न हो, विकास की चरम सीमा हो और आत्मिक शक्ति का सर्वांगीण विकास जिसमें हो चुका हो, जाति, क्षेत्र, व्यक्ति, दल से सर्वथा भिन्न हो, समकारक हो और वास्तव में प्राणियों के लिए समभाव का चरम स्वरूप हो।

ऐसे आदर्श को सामने रखकर यदि मानव अपनी वृत्तियों को मोड़ दे दे, तो आज जो संसार की विषम दशा दृष्टिगत हो रही है, वह सारी की सारी समाहित हो जावे। मानव का मस्तिष्क जब तक नहीं सुलझता है, तब तक उसमें अनेक प्रकार की विषम वृत्तियाँ होती हैं। मस्तिष्क, विषमता की भावना को लेकर चलता है, तभी तो मानव की वृत्तियाँ विकृत बनती हैं। एक दृष्टि से देखा जावे, तो मानव का मस्तिष्क

विचारों का एक मुख्य केन्द्र है और उस केन्द्र के अन्दर यदि सत्ता ज्ञान के साथ वास्तविक तत्त्व-दृष्टि आ जाये, विचारों का परिमार्जन हो करके शुद्ध वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो जाये, तो मस्तिष्क सुधर जाये।

मस्तिष्क के सुधरने से विचारों की शुद्धि होती है और विचारों की शुद्धि से आचार पवित्र बनता है। तब वाणी की धारा पवित्र गंगा की तरह बहने लगती है और जो भी वचन व्यक्त होते हैं, वे प्रत्येक मानव के दिल को प्रमुदित करने वाले बन जाते हैं। विचारों के बदल जाने से इन्सान का जो आचार होता है, वह भी बदले बगैर नहीं रहता है।

विचार, आचार और उच्चार-जब तीनों की एकरूपता बनती है, उस वक्त मनुष्य के स्वयं के जीवन की विषमताओं की तमाम स्थितियाँ समाहित हो जाती हैं और वह अपने जीवन में एकरूपता की भावना का अनुभव करता है। वह भावना पास पड़ोस में रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित करती है और विस्तार पाती हुई वह समाज, राष्ट्र और विश्व को आप्लावित करती है। आज इसी अनुसंधान की आवश्यकता है।

आज विश्व भर में मानव का मस्तिष्क शान्त नहीं है। वह विभिन्न प्रकार की खोजों में संलग्न है। वह चाहता यही है कि मानव जीवन को परम शान्ति का स्वरूप, परम पवित्र रूप, वास्तविक सुख का स्थान उपलब्ध हो। इस आकांक्षा से व्यक्ति अपना रास्ता स्वतः बनाता जाता है। अपने मन की कल्पना के अनुसार वह खोज में लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि अमुक स्थल पर उसे कुछ उपलब्धि होने वाली है, तो वह वहाँ जाने में भी संकोच नहीं करता। चाहे वह स्थल समुद्र की गहराई में हो, चाहे वह पहाड़ों की विकट ऊँचाई में हो और चाहे भयावह जंगल में हो, लेकिन मानव उस उपलब्धि को पाने के लिए अपनी सारी चिंताएँ छोड़कर आगे बढ़ता ही जाता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान प्रगति कर रहा है। इस स्थिति में मानव का मस्तिष्क विज्ञान को ही सब-कुछ समझकर चल रहा है। विज्ञान के विषय में यदि विस्तृत व्याख्या की जाये, तो किसी प्रकार का मतभेद होने का प्रश्न नहीं आता। विज्ञान में सब तत्त्वों का समावेश है। विज्ञान में सबका समन्वय है।

यदि विज्ञान के अर्थ को संकुचित किया जाये और सिर्फ भौतिक तत्त्वों के विकास को ही विज्ञान की विषयवस्तु माना जाये, तो अनेक प्रकार के झगड़े खड़े हो जाते हैं, लेकिन विज्ञान भौतिक तत्त्वों का तो होता ही है और आध्यात्मिक जीवन के साथ भी उसका गहरा सम्बन्ध है। एक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन से ही विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन मानव का मस्तिष्क अन्दर की उस आध्यात्मिक शक्ति को अपना लक्ष्य बनाने में अभी तक पूरा कामयाब नहीं हुआ है। इसीलिए उसका मस्तिष्क बाहरी पदार्थों में ही सुख शान्ति की खोज में लगा हुआ है।

यही कारण है कि विज्ञान की अनेक उपलब्धियाँ होने पर भी मानव को अभी तक सन्तुष्टि नहीं मिल रही है, शान्ति और समता के दर्शन पूर्ण रूप से नहीं हो रहे हैं। मानव अपनी तथाकथित वैज्ञानिक उपलब्धि से सन्तुष्ट है, लेकिन वस्तुतः यह स्थिति दिन प्रतिदिन उसके जीवन को विषमतर बनाती चली जा रही है। वह चाहे भू मण्डल से उठ कर गगनमण्डल में उड़ने लगे, चाहे आकाश के चमचमाते हुए सितारों को पकड़ने के लिए दौड़े, चाहे तथाकथित चन्द्रमा आदि ग्रहों पर पहुँच जाये, लेकिन वहाँ पर भी वास्तविक शान्ति के रूप में परम पवित्र उपलब्धि होने वाली नहीं है। एक दृष्टि से देखा जाये, तो वह खोज एकांगी बन रही है। इस एकांगी खोज को मोड़ देकर के सर्वांगीण खोज के साथ अगर जोड़ा जाये, तो मानव जीवन की तमाम समस्याएँ मानव के धरातल पर सुलझ सकती हैं।

अभी जिन सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना की गयी है, उस प्रार्थना में अनुसंधान का संकेत है। भौतिक अनुसंधान तीव्र गति से बढ़ रहा है, किन्तु आध्यात्मिक अनुसंधान से हर मानव के जीवन को मोड़ देने की आवश्यकता है। इसलिए संकेत किया गया है

तुझ में मुझ में भेद न पाऊं, ऐसा हो संधान।
अजर अमर अखिलेश निरंजन, जय श्री सिद्ध भगवान।।

बन्धुओं ! कविता का संकेत निमित्त मात्र है, लेकिन वह संकेत

हमारे अन्तर की दृष्टि को, अन्तर की जिज्ञासा वृत्ति को, अन्तर की तमन्नाओं को, अन्तर के उल्लास आदि को भी इस खोज की तरफ मोड़ता है, तो जीवन में एकत्व का अनुसंधान अवश्य होता है।

इस कड़ी में तो बड़ा लम्बा चौड़ा संकेत दिया गया है। परमात्मा का अनुसंधान करने के लिए ``**तुझ में मुझ में भेद न पाऊं**``, यह लक्ष्य के रूप में रखा गया है। आत्मा का विकास इतना हो कि ``**परमात्मा के तुल्य मैं बन जाऊं।**`` यह वास्तविक समता का परम आदर्श है और उस स्थिति में गरीब और अमीर का भेद नहीं है। सौभाग्य और दुर्भाग्य की स्थिति नहीं है। वह वास्तव में स्थायी समता का परम रूप है। उस परम रूप का अनुसंधान करने के लिए यदि व्यक्ति निश्चय कर लेता है कि मैं अनुसंधान के साथ भगवान के तुल्य बनूं इतना बड़ा लक्ष्य जब स्थिर होता है, तो वह व्यक्ति उस लक्ष्य को केवल आदर्श के रूप में नहीं रखेगा, बल्कि यथार्थवाद की भूमिका पर इसे वह जीवन के सुधार के रूप में लेगा और सुधार की स्थिति के साथ जब जीवन में उसका आचरण उसी समता सिद्धान्त पर आधारित होगा, तो उसके जीवन का रूप कुछ और ही होगा।

आत्मा में परमात्मा

मैं इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा हूँ। यह परिभ्रमण उसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए है। आत्मिक शक्तियों का विकास हो और जन-मन में समता सिद्धान्त की भावना प्रचारित हो। आज विश्व के अन्दर जिन-जिन बातों का वातावरण बन रहा है, वह चाहे राजनीतिक धरातल पर हो, चाहे सामाजिक क्षेत्र में हो, बस यही आवाज बुलन्द हो रही है कि आज समता प्रत्येक जीवन का अंग बने। वह भले ही समता के रूप में न हो, समाजवाद के रूप में हो, लेकिन वह समाजवाद भी वास्तविक हो। वह समाजवाद भी प्राणवान तब बनेगा, जब कि वह समता सिद्धान्त दर्शन को अपने स्वरूप में स्थान देगा।

समता-सिद्धान्त-दर्शन का तात्पर्य सबकी स्थिति के साथ

उलटफेर करने का नहीं है। बच्चा बच्चे के रूप में रहेगा। वृद्ध वृद्ध के रूप में समझा जायेगा। तरुण तरुण के रूप में देखा जायेगा। बच्चे के रूप में बच्चे की आवश्यकता क्या है और बच्चे को किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता प्रेरित कर सकती है और जीवन के लिए कौनसी वस्तु की आवश्यकता है-वह भी देखना होगा। जीवन में जहाँ भी वर्गीकरण होगा, समता सिद्धान्त के साथ होगा। जो जवान है, वह मस्तिष्क से काम कर रहा है। उसकी मेधा-शक्ति, शारीरिक शक्ति अपव्यय में जा रही है या वाचिक शक्ति का प्रयोग अधिक कर रहा है, उस दृष्टि से भी तरुण के अन्दर वर्गीकरण का भाव रहेगा, लेकिन रहेगा समता सिद्धान्त के साथ।

समता सिद्धान्त की स्थिति से जो वस्तु जैसी है, उस वस्तु को वैसा ही समझ करके और उसके अनुरूप जब आगे का चरण बढ़ेगा, तब उस व्यक्ति में समता भावना का दार्शनिक रूप आयेगा। समताजीवनदर्शन में छोटी-छोटी बातों को ठीक तरह से समझ लेते करके जब उनको समता सिद्धान्त के साथ असली रूप देंगे, तो समता जीवनदर्शन के धरातल पर आध्यात्मिक दर्शन की उपलब्धि करायेगी। आत्मदर्शन की प्राप्ति के साथ जब आध्यात्मिक उल्लास और आन्तरिक निर्विकार दशा प्रबुद्ध व जागृत होगी, तो समता परमात्म दर्शन तक उसके जीवन को नया मोड़ दे सकेगी।

इन सिद्धान्तों के अन्दर व्यक्ति जब स्वयं अपने आपको अन्दर से एक रूप होते हुए, स्वतः समता में ओतप्रोत बनकर सभी सिद्धान्तों की स्थिति को सामने रखते हुए, व्यापक बनाते हुए चलता जायेगा और बढ़ते हुए जब चरम सीमा पर आयेगा, तो वह स्वयं परमात्मा का रूप बनेगा। इसलिए कहा है कि जो आत्मा है, वह स्वयं परमात्मा बन सकती है। आचार्यों का कथन है - अप्पा सो परमप्पा अर्थात् जो आत्मा है, वही परमात्मा है, लेकिन कब? जब सारी विषमताएँ दूर हो जायेंगी। सर्वत्र परम पवित्र समता का साम्राज्य हो जायेगा।

मानव आत्मा का स्वरूप है। आत्मा जब चरम, सर्वांगीण समता रूप में पहुँच जाती है, तब वह निर्विकार दशा को प्राप्त हो जाती

है। वही परमात्मा का रूप, परमात्मा तुल्य बनाने की स्थिति होती है। अनुसंधानिक रूप में जब चलना है, तो हमें अपने आपको टटोलना है।

वह जयपुर नगर राजस्थान की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध है और इस नगर में होली चातुर्मास के आसपास उपस्थित हुआ था और वहाँ कुछ निश्चय का प्रसंग भी आया था, उसके पश्चात जयपुर संघ का अत्यधिक आग्रह होने से चातुर्मास का प्रसंग भी यहाँ बना। चातुर्मास की दृष्टि से मैं यहाँ आ भी गया हूँ, लेकिन अब जयपुर संघ को क्या करना है? जयपुर यानि राजधानी की जनता को अपने जीवन के अन्दर वास्तविक रूप में कुछ परिवर्तन लाना है या उन्हीं कुरीति रिवाजों के साथ अपने जीवन की प्रवृत्ति करनी है ? जो बातें इतने दिनों से चलती आ रही हैं, प्रत्येक व्यक्ति के साथ जो अपनी-अपनी संकुचित स्थिति है और जिसमें वह अपने आपको आबद्ध पाता है, वह अपने आपको खोलने की कोशिश नहीं कर रहा है। अपने आपको व्यापक बनाने के लिए ध्यान नहीं दे रहा है। अभी भी हमें उसी भावना के साथ बंधे रहना है या अपनी आत्मा की भावना को साथ लेकर एकत्व भावना के साथ आगे बढ़ना है ?

यह सारा चिंतन जयपुर की जनता को करना है और करना है आज संपूर्ण मानव समाज को। मैं माध्यम बन रहा हूँ। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बातें बतला रहा हूँ। लेकिन मैं जब बतलाता हूँ, तो वही आप ग्रहण कर लें, उसी को आप मान लें-यह मेरा आग्रह नहीं है। मैं जो कुछ बातें कहता हूँ, उन बातों को आप समझने की कोशिश करें। यदि आपको सत्य, तथ्यात्मक लगे, आपको सही चीज मालूम हो, यदि आपके जीवन के लिए हितावह हो, तो ग्रहण करें। मैं किसी के ऊपर थोपने की स्थिति में नहीं हूँ। हाँ, यदि किन्हीं को गेरे विचारों को समझने में भ्रान्ति हो जाये, तो उस भ्रान्ति को निकालने के लिए हर व्यक्ति के लिए दरवाजा खुला है।

आप दिल खोल करके पूछ सकते हैं कि यह क्या बात है, किस बात का विचार किस रूप में किया जाये, इसके लिए मैं सदैव ही तत्पर हूँ। लेकिन आगे जिस स्थिति से आप लोगों को, एक प्रकाश प्राप्त करना

है और एक नितान्त समतापूर्ण स्थिति में यदि कुछ कार्य प्रारम्भ करना है, तो आज जो समाजवाद की पहल राजनीतिक क्षेत्र में चली है, लेकिन उसमें जिन-जिन बातों की कमी है, उन कमियों पर विचार करते हुए उसमें आध्यात्मिक भावना का पुट देना है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसका समन्वय करते हुए आप समता- सिद्धान्त दर्शन के आधार पर अपने जीवन की गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश करें। कुछ रूढ़िगत परम्पराएँ हैं, जिनके अन्दर मानव घुट रहा है। आज मध्यम वर्ग की जो दुर्दशा है, उसके कारण मानव समझ नहीं पा रहा है कि वह क्या करे। जिनके पास कुछ अधिक पैसा इकट्ठा हो गया है, वे अपने-आपमें फूले नहीं समा रहे हैं और समझ रहे हैं कि वे तो सब-कुछ बन गये हैं, लेकिन जिनके पास इसकी कमी है, वे गम गमोस कर बैठे हैं। आज इस विषमता की खाई को पाटने के लिए समता सिद्धान्त-दर्शन की नितान्त आवश्यकता होगी, ताकि प्रत्येक क्षेत्र का व्यक्ति अपने दिल में रहने वाली विषमताओं को साफ कर सके।

जीवन की भूमि को सम बनाओ

यह चातुर्मास का समय है और चातुर्मास की दृष्टि से संतों का आगमन हुआ है। इन संतों के आगमन और इस चातुर्मास के प्रसंग में आप आध्यात्मिक क्षेत्र में और जीवन के क्षेत्र में एक दृष्टि से कृषक बन जायें। यद्यपि भारत देश कृषिप्रधान देश है। जनसंख्या की दृष्टि से अपने यहाँ किसान अधिक हैं। ये किसान खेती करने के लिए हल हांककर, जमीन के अन्दर बीज डालकर खेती करते हैं और उनके आधार पर जनता का जीवन चलता है।

मैं यह चाहूँगा कि आप भी एक तरह से कृषक बनें। आप सोचेंगे कि क्या इस शहर के अन्दर हमसे खेती करवाएँगे, हल चलवायेंगे ? मैं कहूँगा कि यह हल तो आपको हांकना ही है। आप उस हल को न हांकें, लेकिन जीवन के अन्दर हल हांकिए। अपने जीवन को देखिए कि हमारे मन में, हमारे दिल और दिमाग में कौन-सी घास पैदा हो रही है ? किसान खेती करने लगता है, तो पहले खेत को साफ करता है। उसके अन्दर कंकर-पत्थर रह जायेंगे, तो खेती ठीक से नहीं

हो पायेगी। इसलिए बीज बोने के पहले किसान खेत को साफ करता है। कंकर पत्थरों को बाहर निकालता है और खेत को समभाव से समतल करता है।

आपने कभी किसान को देखा होगा कि किस प्रकार खेतों को साफ करके बीज बोता है और बीज बोने के साथ ही वह निश्चिंत नहीं हो जाता है। लेकिन उसमें यदि कचरा उत्पन्न हो जायेगा, तो उसको भी निकालने का प्रयास करता है और तभी जा करके वह समय के बाद फसल की प्राप्ति करता है। वैसे ही आज इंसान के लिए आवश्यक है कि जीवन की खेती को पकाने के लिए इस चातुर्मास के प्रारम्भ में प्रत्येक मनुष्य अपने मन मस्तिष्क में जो विषमताओं के कंकर पत्थर पड़े हुए हैं, उनको बाहर निकाले, उनको फेंक दे और कंकरों को फेंकने के बाद फिर अपने समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर वीतराग वाणी को श्रवण करे और इसके साथ जो अपने लिए हितावह हो, उसको ग्रहण करे और जो विषम भावना है, उसको छोड़ दे।

जीवन की, अन्तर हृदय की भूमि जब सन होगी, स्वच्छ होगी, तभी उसमें धर्म की, आत्मिक सुख की फसल पकेगी। इस दृष्टि से यदि मानव चले और समता सिद्धान्त दर्शन को जीवन में अपनाते हुए, इस लक्ष्य को अपने सम्मुख रखे, तो यह चातुर्मास आपके लिए, सारे मानव समुदाय के लिए आदर्श उपस्थित कर सकता है।

आप यह न समझिए कि यहाँ सिर्फ महाराज अपने लिए कुछ करते होंगे। मेरे लिए तो मैं साधना में लगा हुआ हूँ और मैं तो मौन रह कर भी साधना कर सकता हूँ। गुफा में बैठकर भी साधना करने की स्थिति में हो सकता हूँ, लेकिन जब इस समाज के बीच में रहना है, तो उसके हित की दृष्टि से भी सोचना पड़ेगा और समाज के हित की बातों को भी सामने रखना पड़ेगा और जो सामाजिक दृष्टि से हितावह है, वह मेरे लिए भी हितावह हो सकता है और वह प्रत्येक मानव के लिए भी हितकर है। इसी दृष्टिकोण से मैं यहाँ कह रहा हूँ। इसमें किसी व्यक्ति विशेष या किसी पार्टी विशेष का प्रसंग नहीं है।

मैं तो यह चाहता हूँ कि जो विषमताएँ हैं, उनको हम दूर करें। व्यक्ति, पार्टी, जाति सब एकरूप होकर मानव के कल्याणार्थ कार्य करे। उसके हित के लिए कार्य करे और वह आगे बढ़े और आगे बढ़कर अपने जीवन को पवित्र करे।

सामाजिक कुरीतियों के कारण अगर कोई विषम परिस्थिति आ गयी है और भेदभाव की दीवार खड़ी हो गयी है, कोई पॅडिएन्ट खड़ा हो गया है, तो उसको निकालने की कोशिश करें। उस विषमता को निकालने से आपका जीवन कितना आनन्द और उल्लासमय हो सकेगा, यह तो अनुभव की बात होगी।

जीवन में भी एक धरातल बनाइए

चातुर्मास में इस जीवन के खेत को शुद्ध कर लेना है और इस क्रिया को उसी रूप में सोचना है जैसे कि आपने इस लालभवन के इस भवन को बनाया। यह पहले क्या था और अब क्या हो गया ! एक-सरीखा हो गया। अब आप सब-के-सब एक धरातल पर बैठे हुए हैं। नीचे एक भी कंकर चुभ नहीं रहा है। कंकर चुभ रहा है क्या ? आपको कोई कष्ट तो हो ही रहा है। उसी तरह से आप समाज के अन्दर भी एक धरातल बनाइए।

आप अपनी स्थिति में रहते हुए एक ऐसा रंगमंच तैयार करें, जीवन का खेत ऐसा तैयार करें, जिसके अन्दर समता सिद्धान्त का एक प्लेटफॉर्म बने। केवल आप स्वयं ही उसमें न बैठें, उसमें अग्रवाल, ओसवाल और माहेश्वरी ही न बैठें, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही न बैठें, लेकिन उसके ऊपर पूरे मानव समाज का अधिकार हो और पूरी मानवता उसके अन्दर शांति की सांस ले सके, पूरे मानव को शान्ति का अनुभव हो सके। पूरी मानवता जहाँ से यह सीख सके कि वर्तमान जीवन कैसे जीयें और भावी जीवन का उज्ज्वल लक्ष्य कैसे रखें ?

यदि आप इन सब बातों को दृष्टिगत रखकर इस जीवन के खेत में समता-सिद्धान्त का धरातल तैयार कर समरूप बना देने का प्रयास करेंगे, तो जयपुर चातुर्मास का यह प्रकाश दूर तक लाइट

फेंकेगा। हवाई जहाज आकाश में उड़ता है, लेकिन कहाँ पर बड़ा स्टेशन है, इसका चालक को पता कैसे लगता है-यह तो आप जानते हैं। कुछ प्रकाश की लाइट पड़ती है, तो आप देख लेते हैं कि बड़ा स्टेशन आ गया।

वह राजधानी का बड़ा स्टेशन है। इस स्टेशन की तरफ राजस्थान का ही ध्यान नहीं है, मैं सोचता हूँ कि दूर-दूर के क्षेत्रों का ध्यान लगा हुआ है और इसकी चमचमाती हुई रोशनी देखने के लिए कई तैयार हो रहे हैं। अगर राजधानी के अन्दर कोई ऐसा आदर्श और पवित्र कार्य जैन समाज को आह्लादित करने वाला हो और पवित्र समता के सिद्धान्त का धरातल मानव-मात्र के विकास का कारण बनता हो, तो यहाँ उस प्रकाश को लाने के लिए सब तैयार बैठे हुए हैं। यहाँ की सुगन्ध दूर-दूर तक फैल सके, वह सारा उत्तरदायित्व जयपुर की जनता पर है।

यदि जयपुर की जनता में, पूर्वगृहीत आग्रह की ऐसी कोई भावना हो, जिसमें जाति, व्यक्ति पार्टी के घेरे में पड़े हुए हों, जिसने भाई-भाई के बीच में विकट परिस्थिति पैदा कर रखी हो, तो उन विषमताओं को दूर कर सारी स्थितियों को समाहित करके एक धरातल की स्थिति के साथ आदर्श उपस्थित करना है। जयपुर में चातुर्मास के नाते जयपुर की जनता के कृषकपने की अद्वितीय क्षमता के रूप में आपको अपने दिल और दिमाग को साफ करते हुए एक ऐसी फसल पैदा करनी है, जिससे अनेक लोगों को तृप्ति मिल सकती हो। उस तृप्ति के लिए आप सबको तैयार होना है और उसकी तैयारी करने के लिए अभी से कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए।

आप अपने जीवन का खेत तैयार करने के लिए, कंकर-पत्थर एक तरफ करने के लिए, कचरा साफ करने के लिए एकत्व भावना से आगे बढ़ें। एकत्व भावना जब गन में, जीवन में जग जायेगी, तब '**तुझ में मुझ में भेद न पाऊं**' की स्थिति पर पहुँच सकेंगे।

जाना कहाँ है ? हमें भगवान के तुल्य बनने की कोशिश करनी है और छोटी-छोटी बातों में नहीं उलझना है। उदाहरण के तौर पर किसी को कोलकाता जाना है और वह जौहरी बाजार से निकलता है और जौहरी बाजार के अन्दर कोई व्यक्ति आकर उससे लड़ने की कोशिश

करे कि कहाँ जाते हो ? मैं इतना मजमा खड़ा कर दूँगा, मैं यह कर दूँगा, मैं वह कर दूँगा, तो वह कोलकाता जाने वाला सोचेगा कि इस भाई को उत्तर दूँगा और इससे कुछ प्रत्यालाप करूँगा, तो रेल का टाइम चूक जाऊँगा और टाइम से कोलकाता नहीं पहुँच पाऊँगा। तो उस वक्त वह जौहरी बाजार के अन्दर उस व्यक्ति से लड़ने के लिए खड़ा रहेगा या मजमे की बात करेगा या तमाशे की बात करेगा या चुपचाप निकलकर चला जावेगा ?

स्टेशन के टाइम को समझने वाला, कोलकाता टाइम से पहुँचने की इच्छा रखने वाला आदमी उस व्यक्ति से जौहरी बाजार में लड़ने की कोशिश नहीं करेगा। उसी तरह से हमारा परम लक्ष्य वहाँ जाना है और काफी दूरी तय करके जाना है, तो जो जीवन के क्षेत्र में कोई जौहरी बाजार वाली बाधाएँ खड़ी कर दे और गलत वातावरण तैयार करने की कोशिश करे, तो मैं सोचता हूँ कि उसकी तरफ खयाल नहीं करते हुए अपने जीवन की मंजिल पर मुस्तैदी से आगे बढ़ते हुए अपूर्व आदर्श उपस्थित करने का प्रयत्न होना चाहिए।

आप इस बात को ध्यान में रखें कि समता-सिद्धान्त दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्मदर्शन और समता परमात्मदर्शन-इन चार बातों का उद्देश्य जीवन की कला है, जीवन का परम अनुसन्धान है। आप यदि इन बातों का गहराई से चिंतन मनन करेंगे, समता को जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे, तो जीवन के दुःख, वैषम्य और विपदाएँ अवश्य ही दूर होंगी और आत्मा परमात्मा की स्थिति तक पहुँच सकेगी।

लाल भवन 20 जुलाई 1972

❖ ❖ ❖

जैसे संस्कार किया हुआ अन्न मधुर व सुपाच्य होता है, वैसे ही संस्कार संपन्न जीवन जगत में सबके लिए स्पृहणीय होता है।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

❖ ❖ ❖

असंखयं जीविय मा पमायए

जीवन बड़ा असंस्कृत है, टूटने के बाद पुनः संध नहीं सकता, अतः प्रमाद मत करो !

- उत्तराध्ययन सूत्र

❖ ❖ ❖

संस्कारित जीवन

सुमति जिनेसर साहिब जी
मेघरथ नृप नो नन्द !
सुमंगला माता तणो जी !
तनय सदा सुखकन्द !
प्रभु त्रिभुवन तिलोकी !
सुमति सुमति दातार
महा महिमा विलोकी !
प्रणमूं बार हजार
प्रभु त्रिभुवन तिलोकी !

प्रभु सुमतिनाथ भगवान के चरणों में प्रार्थना की कड़ियों का उच्चारण किया है। प्रभु के अनेक नाम हैं। अनेक नामों से प्रभु को पुकारा जा सकता है। उनमें से एक सुमतिनाथ भी है। सुमति का अर्थ है-सदबुद्धि।

जिनकी सद्मति होती है, सद्ज्ञान जिनका होता है, सद्भाव जिनमें होता है, पवित्र अध्यवसाय जिनकी आत्मा के अन्दर चलता है- वे सुमति कहे जा सकते हैं। लेकिन ऐसी सुमति रखने वाले समस्त प्राणियों के स्वामी के रूप में जो ख्यातित हैं, वे सुमतिनाथ कहलाते हैं। वह सुमतिनाथ भगवान के चरणों में कवि ने प्रार्थना के रूप में संकेत

किया है। यह भी बताया है कि सुमतिनाथ सुमति के दाता हैं।

सुमति के दाता दयालु कहलाते हैं। वे सुमति का दान भी करते हैं। आज सुमति के लेने वाले व्यक्तियों की कमी है क्या ? आज देखा जाये, तो संसार के अन्दर जितने प्राणी हैं, उन सब प्राणियों को सुमति की आवश्यकता है। प्राणी जब सुमति को छोड़ कर कुमति के अधीन होता है, तभी वह अपने आपको खतरे में डालता है। तब उसका परिवार में सम्मान नहीं रहता है। वह समाज में भी विषमता पैदा करता है और राष्ट्र के अन्दर भी वह बहुत भयावह दृश्य उपस्थित कर देता है।

आज सर्वत्र कुमति का प्रदर्शन हो रहा है। इस कुमति के कारण ही संसार तबाह हो रहा है। इसलिए ऐसे समय में सुमतिनाथ भगवान की वह दातार वृत्ति, वह उदार वृत्ति आवश्यक है। लेकिन सुमतिनाथ भगवान सुमति देंगे किसको ? सुमति लेने वाले व्यक्तियों को, जिज्ञासु व्यक्तियों को, अगर वे उपस्थित हों। दातार अपनी उदारता से कुछ देना चाहता है, लेकिन लेने वाला भी तो चाहिए। लेने वाला इन्सान यदि तैयार हो जाता है, तो दातार अपनी उदारता के साथ दे भी सकता है। प्रश्न होगा, महाराज ! लेने वालों की कमी नहीं है। प्रार्थना हम कर ही रहे हैं। आपने जिन शब्दों का उच्चारण किया, प्रार्थना की जिन कड़ियों के साथ आपका सम्बन्ध जुड़ा, प्रार्थना की उन कड़ियों के साथ हमारा भी सम्बन्ध रहा हुआ है।

हम इसी के लिए यहाँ आये हैं कि हम भगवान की वाणी का श्रवण करके अपने अपने जीवन में सुमति का साम्राज्य स्थापित करें। इस सामूहिक प्रार्थना के अन्दर आपका सामूहिक स्वर निकला हो या नहीं, मैंने इसका उच्चारण किया, वह आपकी सामूहिक भावना की दृष्टि से ही किया है। आप कहेंगे, जब हमें सुमति की अभिलाषा है, अपेक्षा है, तब ही यहाँ आकर खड़े हुए हैं, बैठे हैं। लेकिन इस प्रकार की प्रार्थना का उच्चारण कर लेने मात्र से, प्रभु से याचना करने भर से सुमति मिलने वाली नहीं है।

सुमति अन्तर में जागृत की जाती है

एक दृष्टि से देखा जाये, तो सुमति लेने देने जैसी चीज नहीं होती है। वह तो पैदा की जाती है। पैदा से तात्पर्य प्रादुर्भाव से है, प्रकट करने से है, जागृत करने से है, न कि नवीन उत्पत्ति करने से, क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश भी होता है। लेकिन सुमति तो आत्मिक शक्ति का परिणाम है। आत्मा स्थायी है, तो उसके मौलिक गुण भी स्थायी होंगे। इसलिए आत्मा के गुण की पैदाईश नवीन उत्पत्ति के रूप में नहीं होती है। उसका आवरण मात्र हटता है। शक्ति पैदा होती है। आविर्भाव और तिरोभाव भी हुआ करता है। तो उस शक्ति को प्रकट करने के लिए प्रयास करना है। एक दूसरे को सुमति देने का प्रसंग है। वह समता की भावना पर आधारित है। जिन्हें सुमति प्राप्त है, वे लुटाते चले जायें, लेकिन लेने वाले की स्थिति नहीं बनेगी तो ? जैसे आप कोई वस्तु उठा कर किसी के हाथ में देते हैं, उस तरह देने का वह प्रश्न तो नहीं है।

हम भगवान के आदर्श को देखकर अपने अन्दर की स्थायी शक्ति को पहिचानें। हमारे जीवन में सुमति का भण्डार भरा हुआ है। उसका प्रादुर्भाव करने के लिए, प्रकट करने के लिए हम प्रयास में लग जाते हैं, तो हम सुमति का भण्डार भरा पाते हैं। इसलिए यहाँ वीतराग वाणी के प्रसंग से आपके सामने विचार रखें। वह रखने का प्रसंग भी है। जिस समय जम्बूस्वामी सुधर्मा स्वामी के पास पहुँचे, उस समय जम्बू स्वामी के मन में प्रबल जिज्ञासा हुई मैं भी सुमति प्राप्त करूँ। इस संसार में रहते हुए कुमति के चक्र में अनादि काल से नाना दुःख और झंझावातों में जीवन बिताया, लेकिन मैं अब शान्ति की स्थिति में पहुँचना चाहता हूँ। सुधर्मास्वामी ने जम्बू स्वामी को उपदेश दिया और जिस तत्त्व का सुमति के साथ सम्बन्ध जुड़ता है, उसका संकेत देते हुए कहा - तेणं कालेणं तेणं समएणं अर्थात् उस समय भगवान महावीर राजगिरि पधारे। राजगिरि नगरी में रिद्धि-सिद्धि की पूर्णता थी।

उस राजगिरि नगरी के अन्दर मानव की उस सुमति का भली-

भाँति विकास करने के लिए उन्होंने सुधर्मा स्वामी को जो बातें बतलायीं, उन्हीं बातों को सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को देते हुए प्रकट कर रहे हैं। वे बातें हमारे सामने भी आ रही हैं। हम सुगति के अनुसार बढ़कर शांति का अनुभव करें और परलोक उज्ज्वल बना सकें - इस बात का प्रसंग लम्बे-चौड़े विस्तार के साथ या सूक्ष्मता से - जो भी मिले, जैसे भी मिले, वह श्रवण करें। वह श्रवण कहाँ से करेंगे, किस रूप में करेंगे ? सुमति के साथ श्रवण करेंगे, तो वह श्रवण सुखकारी होगा। वह जीवन में विवेकशक्ति पैदा करेगा।

यदि हमने सुमति को हटाया और कुमति के साथ श्रवण किया, तो कुमति में जो चीज आयेगी, वह कुमति के रूप में ही परिणत होती हुई चली जायेगी। आपको मालूम है, घासलेट का तेल जिस बर्तन में हो, उस बर्तन में यदि बढ़िया से बढ़िया घी भी डाल दिया जाये, तो उस घी की क्या दशा होगी ? घी को चखें, तो कैसा लगेगा ? सुगन्ध क्या हो जायेगी ? सारी की सारी घासलेट में परिणत हो जायेगी। जिसका स्वभाव जहरीला हो, उस जहरीले तत्त्व में अमृत को जरा-सा डाल देंगे, तो वह पवित्र बन जायेगा ?

संस्कारित जीवन

यदि मानव के मस्तिष्क में सुमति का सुन्दर सरोवर लहलहा रहा है, उसके साथ वीतराग धर्म की वाणी का श्रवण हुआ, तो वह सारा का सारा अमृतमय हो जायेगा। उसे अमृतमय बनाने के लिए हम जीवन को टटोलें। भगवान ने निर्देश दिया है मानव ! तू अपने जीवन को देख "**असंखयं जीविय मा पमायए**" यह भगवान महावीर की उद्घोषणा है मानव के लिए। हे मानव ! तुम्हारे जीवन के अन्दर सुमति के संस्कार नहीं हैं। तुम्हारा जीवन असंस्कारित है। असंस्कारित जीवन में किसी तत्त्व को डाल दोगे, तो उसका संस्कार नहीं हो पायेगा। उसका दुरुपयोग होगा। कच्चे घड़े में यदि अमृत डाल दोगे, तो घड़ा भी चला जायेगा और अमृत भी।

आपको अगर संस्कारित जीवन बनाना है, तो सुमति आवश्यक है, सुमति के बिना संस्कारित जीवन नहीं बनता है। कुमति का जीवन असंस्कारित जीवन है। अज्ञान का जीवन असंस्कारित जीवन है। इसे आप यों समझिए कि एक बच्चे के सामने आप बहुमूल्य रत्न रख दीजिए, आप अपनी अंगूठी का तीन लाख, पाँच लाख का हीरा रख दीजिए, वह बच्चा उस हीरे की क्या कीमत करेगा ? वह बच्चा उस हीरे को क्या समझेगा ? क्या वह बच्चा उस हीरे को यत्न से रखने का प्रयत्न करेगा ? नहीं ! वह तो उसे उठाकर फेंक देगा। बच्चे के जीवन में हीरे की पहचान का संस्कार ही नहीं है। इसलिए वह बच्चा उस ज्ञान के अभाव में, प्रारम्भिक स्थिति में असंस्कारित होने के कारण हीरे के विषय में कुछ नहीं जान सकता है।

आप देखते हैं, मनुष्यों की आकृति वाले बहुत-से प्राणी, हूबहू मनुष्यों की चेष्टाओं का अनुसरण करने वाले प्राणी होते हुए भी उनके अन्दर मनुष्यों सरीखे संस्कार पूर्ण रूप से नहीं पाये जाते। आप देखें कि वे कौन हैं ? आपके यहाँ, जयपुर शहर के अन्दर यदा-कदा उनका अवलोकन भी आपने किया होगा-जो बन्दर जाति कहलाती है, जिनके इधर-उधर आपको दर्शन होते ही रहते हैं।

मधोपुर के अन्दर तो इनका बोलबाला है। वहाँ स्थानक के अन्दर ये बहुत उपद्रव करते हैं। कभी-कभी मुँहपत्ती उठाकर ले जाते हैं। कभी कभी वस्त्र उठाकर ले जाते हैं। उन वस्त्रों को वह समझते नहीं हैं कि वे क्या हैं और उन वस्त्रों की चिन्दी-चिन्दी करके, सबको बता-बता कर फाड़ डालते हैं। किसलिए ? सिर्फ रोटी के टुकड़े के लिए और आप उनको रोटी डाल देते हैं, तो आपकी जीन्स वे छोड़ देंगे और नहीं देंगे, तो वे उन वस्त्रों को बता बता कर फाड़ेंगे। आप सोचिए कि जैसे आप कपड़ों की कद्र कर रहे हैं, जिन वस्तुओं के पीछे आप बहुत गुत्थ हो रहे हैं, उन्हीं वस्तुओं को ले जाकर वे उनका दुरुपयोग करते हैं। आप कहेंगे कि महाराज ये तो बन्दर जाति है। उसकी चेष्टा तो करीब-करीब मनुष्यों जैसी है, लेकिन फिर भी मनुष्यों जैसे संस्कार नहीं है। उनका असंस्कारित जीवन है।

आप बन्दरों के जीवन को असंस्कारित जीवन कहेंगे और संस्कारित जीवन को आप मनुष्य जीवन कहेंगे। बन्धुओं ! सोचने की यही बात है। आज संस्कारित और असंस्कारित जीवन का प्रश्न गम्भीर है। मनुष्य जीवन तो अवश्य जी रहा है, लेकिन कैसा जी रहा है ? **''किं जीवनम्''** जीवन कैसा है और क्या है, आज यह प्रश्नवाचक चिह्न संसार के सामने मुँह बाये खड़ा है। जीवन का यह प्रश्न जब खड़ा होता है और जब तक सुलझता नहीं, तब तक मनुष्य का जीवन जीवन नहीं कहला सकता।

एक दृष्टि से देखा जाये, तो जीवन मशीनरी की तरह चलता जा रहा है। मशीन को तो फिर भी कुछ समय के लिए छुट्टी मिल जाती है। मशीन हफ्ते के अन्दर एक रोज तो विश्राम लेती होगी, लेकिन मानव जीवन की मशीनरी तो हफ्ते में एक दिन भी विश्राम लेती है या नहीं ? सरकार के डंडे से चाहे व्यापार का लेनदेन बन्द कर दिया जाता होगा, लेकिन उस रोज बन्द करने के बावजूद भी अनुमानतः दूसरे दिन अधिक भार आता होगा। मैं अनुमानतः शब्द इसलिए कह रहा हूँ कि कुछ लोगों के शब्द मेरे कान में आते हैं। मैं जब कहता हूँ कि रविवार को तो छुट्टी रहती है, तो वे कहते हैं - महाराज! रविवार को तो डबल काम रहता है। क्या उस मशीनरी की तरह ही अपना जीवन बिताने वाले व्यक्तियों के जीवन को मैं मानव जीवन कहूँ? क्या आप उसको मानव-जीवन कहेंगे ? नहीं। किसको मानव-जीवन कहना-यह प्रश्न आपके सामने खड़ा है। आपके सामने ही नहीं, बल्कि मानवमात्र के सामने यह प्रश्नवाचक चिह्न है।

चिन्तन और मनन कीजिए। दो हाथ, दो पैर, मुँह और आँख आ जाने मात्र से क्या मानव-जीवन बन गया ? क्या अच्छा खाना खाने से मानव-जीवन बन गया ? या अच्छे वस्त्र पहनने से मानव-जीवन बन गया ? अच्छे और बढ़िया मकानों में गादी-तकिये लगाकर और पंखे की ठंडी हवा खाने से मानव-जीवन बन गया ? क्या है मानव - जीवन ? कभी एकान्त के क्षणों में आप इस प्रश्न पर चिन्तन कीजिए।

क्या मानव मिट्टी के ढेले के रूप में है ? क्या आज का मानव

केवल एक तरह का पिण्ड या पुतला बन गया है ? उसको जीवन की कला याद नहीं, जीवन का स्वरूप ख्याल में नहीं, जिससे वह अपने जीवन को लेकर चले और कहे कि मैं मानव-जीवन जी रहा हूँ। अरे भाई! कौन सा जीवन जी रहे हो ? संस्कारित जीवन जी रहे हो या असंस्कारित जीवन जी रहे हो? संस्कारित जीवन जीने वाला व्यक्ति कुछ और ही होता है और असंस्कारित जीवन जीने वाला व्यक्ति कुछ और ही होता है। रात और दिन का अन्तर है। प्रकाश और अंधकार का फर्क है।

असंस्कारित जीवन में पग-पग पर ठोकरें लगती हैं। असंस्कारित जीवन न स्वयं को समझता है और न पर को समझता है। न स्वयं के हित को देखता है और न पर के हित को देखता है। उसके जीवन की नौका बिना पतवार के इधर उधर भटकती रहती है। उसका जीवन कहीं ठिकाने पर नहीं रहता। ऐसा प्रमादी जीवन और इस प्रकार का असंस्कारित जीवन विश्व के अन्दर जब उपलब्ध होता है, तो वहाँ अशांति की ज्वाला नहीं भड़केगी, तो और क्या होगा ?

जहाँ जीवन का विवेक और जीवन का पता नहीं, जहाँ जीवन के संस्कारों को परिमार्जन करने की स्थिति नहीं, वहाँ जीवन की वही स्थिति है। आज आप जीवन के प्रत्येक तत्त्व का चिन्तन कीजिए। मानव जीवन के विषय में ही मैं कह रहा हूँ। इसके साथ ही साथ आप संसार में पदार्थों का भी अवलोकन करें। उन पदार्थों में संस्कारित और असंस्कारित दो तरह के पदार्थ पाये जाते हैं। जो संस्कारित पदार्थ हैं, उनका महत्त्व है और जो असंस्कारित पदार्थ हैं, उनका कोई महत्त्व नहीं।

आप कभी कभी अपनी दृष्टि में विवाह शादियों के प्रसंग पर इन बहिनों के सिर पर गिट्टी के कलशों को देखते होंगे। सम्भव है बड़े शहरों के अन्दर नहीं हों, लेकिन विवाह शादियों के प्रसंगों पर घड़े पर घड़ा रख कर और उसके गले में जेवर पहनाया जाता है। वहाँ शायद वह प्रथा नहीं होगी। वह प्रथा कम हो रही है, लेकिन गाँवों के अन्दर देखने को मिलता है कि बहिनें विवाह के प्रसंग पर सुन्दर वस्त्र पहन कर, जेवर पहन कर गीत गाती हुई कुम्भकार के यहाँ पहुँचती हैं और

कलशों की लाइन हैं, बड़े और छोटे एक के ऊपर एक कलश चढ़ाकर अपने जेवर उन घड़ों के गले में डालती हैं।

मेवाड़ के गाँवों में आपको यह देखने को मिलेगा। वे फिर बड़े जतन से चलती हैं। शायद उपवास करके उतने जतन से नहीं चलती होंगी, जितनी वहाँ जतन से चलती हैं। उनका ख्याल रहता है कि यह घड़ा कहीं गिर नहीं जाये। सावधानी के साथ मन को एकाग्र करके चलती हैं और जब विवाह के मकान के दरवाजे पर जाती हैं, तो वहाँ दूसरी बहिनें फिर उनका सत्कार करके, आरती करके दरवाजे से ले जाकर अन्दर रखती हैं। बन्धुओं ! इस प्रक्रिया को आप देख चुके होंगे। नहीं देखा, तो आप मस्तिष्क में कल्पना कर लीजिए। आप सोचिए कि यह किसकी कद्र हो रही है? बहिनों के सिरों पर मिट्टी क्यों चढ़े ?

इन बहिनों को यदि कहा जावे कि इन विवाह-शादियों के प्रसंग पर आप जंगल के अन्दर से एक मिट्टी का ढेला उठाकर अपने सिर पर रखकर चलिये। चलेंगी वे ? नहीं। मिट्टी का ढेला उठाने के लिए कहेंगे, तो बड़ी नाराज हो जायेंगी और कहेंगी कि क्या हमको गजदूरनी समझा है कि जो आप मिट्टी का ढेला उठवा रहे हैं। लेकिन आप सोचिए, उस मिट्टी के ढेले को सिर पर उठाने में अपना अपमान समझती हैं और उसी मिट्टी को वह घड़े के रूप में सिर पर उठाकर लेकर आ रही हैं। क्या अन्तर पड़ा ? मिट्टी वही, लेकिन उस मिट्टी में और उस मिट्टी में रात और दिन का अन्तर पड़ गया।

वह मिट्टी असंस्कारित मिट्टी थी, जो ढेले के रूप में पड़ी थी, जिसके ऊपर कोई भी व्यक्ति अशुचि कर सकता है। उसको कोई भी ठोकर मार सकता है। कुदाली से खोद सकता है, लेकिन उसी मिट्टी को जब कुम्भकार ने उठाकर घड़ा बनाया और उस मिट्टी का उसने संस्कार करना चालू किया, तो वह संस्कार बड़ी मुश्किल से हुआ और उसको उसे खूब मथा। राल मिलाई, लेकिन मिट्टी ने सोचा कि मुझे तो मेरा संस्कार करना है। कुम्भकार ने उस मिट्टी के ढेले को संस्कार करने के लिए उसे चाक पर चढ़ाया। उसको चक्कर भी खिलाया, लेकिन मिट्टी ने तो सोचा कि मुझे तो संस्कारित होना है। तो क्या वह मिट्टी नाराज हुई ? नहीं।

इतने से ही कुम्भकार नहीं रुका। उसे आकार देकर ऊपर से उसे ठोका भी। आपने कुम्हार को देखा होगा। बाहर से तो जोर-जोर से चोट करता है, लेकिन फिर भी उसके अन्दर में वह हाथ रखता है और उस घड़े को पीटकर ठीक कर देता है। फिर भी मिट्टी कहती है कि तुम खूब पीटो, मुझे तो संस्कारित रहना है और पीटने के बाद भी कुम्हार ने चैन नहीं लिया और उसको कहाँ रखा ? आग के अन्दर। उसके अणु-अणु में गर्मी पहुँचा दी लेकिन फिर भी उस मिट्टी ने सोचा कि खूब गर्मी पहुँचाओ। लेकिन मैं घड़े के रूप को नहीं छोड़ूँगी और मुझे तो संस्कारित बनना है। वह मिट्टी का घड़ा अपनी परीक्षाओं में जब उत्तीर्ण हो गया, तो वह मिट्टी की दृष्टि से संस्कारित बन गया, घड़े की दृष्टि से संस्कारित बन गया और बहिनों के सिर पर चढ़ गया।

संस्कारित बनने के लिए सहिष्णु बनो !

आज का इन्सान अपने मन में क्या-क्या अभिलाषा रखता है ? यही कि मैं दुनिया का मान-सम्मान ग्रहण करूँ। दुनिया के सिर पर चढ़ कर दुनिया का वंदनीय और पूजनीय बनूं। अरे ! तू आदर और सत्कार के पीछे दीवाना बन रहा है। मान-सम्मान लेने के पीछे भाग रहा है। तू अपने जीवन को देख। तुम्हारा जीवन क्या है ? तू मिट्टी के ढेले की तरह है या तू मिट्टी के घड़े की तरह है ? मिट्टी के ढेले ने तो मान-सम्मान की परवाह नहीं की। मिट्टी के मन में तो यह ध्यान रहा कि मुझे संस्कारित बनना है। संस्कारित बनने में वह अनेक आपत्तियों को सहकर चली, तो मिट्टी का संस्कार हो गया।

यदि इन्सान को अपना जीवन जीना है, यदि इन्सान को जीवन के प्रश्न को हल करना है कि मेरा जीवन क्या है ? तो इस जीवन के प्रश्न को हल करने में सबसे पहले उसे मिट्टी से शिक्षा लेनी चाहिए कि मिट्टी के समान मैं निश्चल, दृढ़ धैर्यवान बन जाऊँ। मिट्टी पर कुम्हार ने थपेड़े लगाये। मुझ पर भी थपेड़े लगाने वाला कोई आ जाये, तो उस समय मैं शान्त रहता हूँ, स्थिर रहता हूँ या नहीं ? आत्म-स्वरूप मेरा उज्ज्वल होता है या मैं आत्मा से विस्मृत होता हूँ। मैं शान्ति को छोड़ता हूँ या रखता हूँ ? यह प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन करना है।

वह चिन्तन नहीं होगा, तब तक जीवन संस्कारित नहीं हो पायेगा। अरे! थपेड़े खाना तो दूर रहा, यदि कोई व्यक्ति दूर खड़े-खड़े अंगुली उठाकर कह दे, मेरे सामने क्या बोल रहा है, तुम्हारी मूँछ का बाल उखाड़ कर फेंक दूंगा। इतने शब्द ही उस व्यक्ति को उत्तेजित किये बिना नहीं रहते और वह व्यक्ति कथन मात्र से इतना उत्तेजित हो जाता है कि अपने आपे को छोड़ देता है और मानवता को तिलांजलि देकर मुकद्दमेबाजी के लिए तैयार हो जाता है। हालांकि न उसने मूंछ के बाल पर हाथ लगाया, न उखाड़ी, फिर भी उसे जोश आ गया। यह जोश किस बात का द्योतन कर रहा है ? उसी बात का द्योतन कर रहा है।

इन्सान मिट्टी का ढेला नहीं हो सकता है। मिट्टी से बना है। इन्सान मिट्टी का अंश है, लेकिन मिट्टी की शिक्षा इन्सान में नहीं है। मिट्टी कितने गुण रखती है। असंस्कारित अवस्था में भी मिट्टी समभाव स्थिति में रहती है। इन्सान कहता है, मैं बहुत बड़ा विद्वान हूँ। मैं बहुत बड़ा अधिकारी हूँ। मैं बहुत बड़ा प्रोफेसर हूँ। मैं बहुत बड़ा व्यापारी हूँ। मैं बहुत बड़ा वकील हूँ। मैं बहुत बड़ा बेरिस्टर हूँ। मैं सब-कुछ हूँ। अरे ! सब-कुछ है, लेकिन इसके पीछे अपने जीवन का भी कुछ विचार है ? जीवन की स्थिति को भी कुछ समझता है या नहीं ? इस प्रकार के शब्दों से अपने आपे से बाहर हो जाना, अपने स्वभाव को छोड़ देना, अपनी शक्ति को छोड़कर, सुमति को छोड़कर कुमति की ओर चले जाना - यह संस्कारित स्थिति का लक्षण नहीं है।

संस्कारिता का महत्व

मैं मिट्टी की बात ही क्यों कहूँ ? पृथ्वी की प्रत्येक सामग्री, पृथ्वी का प्रत्येक पदार्थ संस्कारिता का प्रदर्शन कर सकता है। लाल भवन में बैठे हुए हैं हम। यह लाल भवन किन तत्त्वों से बना है ? मिट्टी से बना है। पत्थरों से बना है। मिट्टी और पत्थर कहाँ से आता है ? मिट्टी खदान में थी। पत्थर खदान में था। उस वक्त तक उनकी कोई कदर नहीं थी। लेकिन वहाँ से बाहर निकलने पर कदरी बन गयी। पत्थर पर टांकी लगायी गयी। कारीगर ने पत्थर को खूब छीला और छील-छील

कर दीवार में फिट कर दिया। इससे पत्थर का संस्कार हो गया। दीवार का संस्कार हो गया और लालभवन की स्थिति में आपके सामने आ गया।

लाल भवन ममत्व का पुतला बन गया। आप कहते हैं-"**हमारा लाल भवन।**" चाहे व्यक्तिगत रूप से न हो, पर सामूहिक रूप से है। इसका इतना महत्व क्यों बन गया? परमाणु वही थे। चीज वही थी। लेकिन उनका संस्कार हो गया। वहाँ टीन की छाया में बैठे हुए हैं, वह टीन कहाँ से आया ? लोहे से। वह टिन संस्कारित बनी लोहे के ढेले से। लोहे के पत्थर का भिलाई के पास बहुत बड़ा पहाड़ खड़ा हुआ है, जिस पर लोग अशुचि करते हैं। वहाँ से लोहे का पत्थर निकला और भिलाई की भट्टियों में पहुँचा। भट्टियों में पहुँच कर उसने संस्कार ग्रहण किया और टीन के रूप में परिवर्तित हुआ और मनुष्य को छाया देने वाला बन गया।

वाह रे लोहे! तू संस्कारित होकर दुनिया को छाया दे, शान्ति दे, लेकिन मानव नाम धारण करने वाला मनुष्य अपने-आपको मानव कहते हुए दुनिया को शान्ति देता है या अशान्ति देता है ? दुनिया के लिए फूल बनता है या दुनिया के लिए शूल बनता है ? क्या मानव ने अपने जीवन में यह सोचा है ? मैं आपको इस विषय में क्या बताऊँ ? प्रभु महावीर ने कहा है - जिस मानव का, पुरुष का या स्त्री का जीवन संस्कारित बन जाता है, उसका जीवन बदल जाता है। जिसका जीवन संस्कारित नहीं होता है, वह चाहे जितनी अवस्था या स्थिति प्राप्त कर ले, लेकिन वह दूसरों के साथ भलाई करने वाला व्यक्ति नहीं बनता।

एक अस्सी वर्ष की बुढ़िया और पैसे की दृष्टि से करोड़पति की माता, लेकिन जीवन की दृष्टि से वह मिट्टी के ढेले से भी गयी बीती थी। रात और दिन संघर्ष, हाय-हाय। परिवार के सदस्यों में महाभारत का दृश्य उपस्थित करने वाली। सेठ ने चिंतन किया कि मुझे जीवन के संस्कार मिले हैं। मैं यद्यपि इसी माता की कुक्षी से जन्म लेकर आया हूँ, फिर भी मैं जीवन के स्वरूप को कुछ समझने लगा हूँ। लेकिन मेरी माता अभी तक जीवन को नहीं समझ पा रही है कि जीवन का क्या मूल्य है? रात और दिन परिवार के सदस्यों को तंग कर रही है। घर के

अन्दर अशान्ति की ज्वाला सुलग रही है। इस माता का जीवन संस्कारित कैसे बने ?

पुत्र ने विनीत भाव से माता के चरणों में नमन करते हुए निवेदन किया - मातेश्वरी ! तू मेरी जननी है। दुनिया में कहावत है, "**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।**" जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़ कर है। मैं तुम्हारी उसी तरह कद्र करता हूँ। लेकिन तुम्हारा जीवन असंस्कारित जीवन चल रहा है। अस्सी वर्ष की हो गयी हो, लेकिन जीवन में परिवर्तन नहीं है। वही पशुपन है, अनाड़ीपन है। यह कौन-सा जीवन तुम जी रही हो? मातेश्वरी ! अपने जीवन को संस्कारित करो। अस्सी वर्ष में जो कार्य किये, उससे निवृत्ति लो और जीवन को मांजने के लिए, सन्मार्ग की ओर जाने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित रूप में ढालो।

पुत्र का निवेदन सुनने के पश्चात् माता कहने लगी, छोकरे ! तू नहीं समझता। मैंने गरीबी के दिन भी देखे हैं। आज तू करोड़पति बन गया, तो क्या हो गया। यह पुत्रवधू इस प्रकार की फिजूलखर्ची करती है। ये छोकरे इस प्रकार पैसे बर्बाद करते हैं - यह मुझे बर्दाश्त नहीं। इसलिए मैं लड़े बिना नहीं रह सकती। पुत्र ने कहा - जैसा करोगी, वैसा भरोगी। पुत्र की बात मातेश्वरी ने स्वीकार नहीं की। तब सेठ ने सोचा, इनके जीवन से अब ये संस्कार जाने वाले नहीं हैं, लेकिन जिनका जीवन कोमल है, जो अभी बच्चे हैं, जो तरुण हैं, उनमें फिर भी संस्कार उत्पन्न किये जा सकते हैं।

इसलिए परिवार के सब सदस्यों को एकत्र करके सेठ ने नम्र भाव के साथ निवेदन किया - आप मेरे परिवार के सदस्य हैं। मेरी आत्मा के तुल्य हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप अपने जीवन को समझें। यह जीवन असंस्कारित जीवन रहता है, तो मुझे दर्द होता है। आप अपने जीवन को संस्कारित बनाने के लिए कुछ प्रण करें। विनीत परिवार के सदस्यों ने सेठ की बात को ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् कहा - आप क्या आदेश देना चाहते हैं ? आपके आदेश का पालन करना पहला कर्तव्य होगा। सेठ ने कहा - यह मेरी माता अस्सी

वर्ष की वृद्धा है। अपने परिवार की मुखिया है। लेकिन इसके जीवन में जीवन के संस्कार नहीं हैं। यह हर किसी के साथ लड़ती झगड़ती है। आप लोग इसके ऊपर रोष न करें। इसकी किसी बात पर ध्यान नहीं दें। बूढ़े और बच्चे को एक समझ कर माफ करें, जिससे घर में कलह का वातावरण पैदा नहीं हो।

परिवार के सब सदस्यों ने अनुशासन के नाते यह स्वीकार किया और घर में शान्ति का वातावरण बन गया। लेकिन वृद्धा का असंस्कारित जीवन समाप्त नहीं हुआ। उसने सोचा परिवार के सदस्य मेरे से लड़ाई नहीं करते। मुझे लड़ाई किये बिना चैन नहीं मिलता। वह घर से बाहर निकली। पड़ोसी के घर पहुँची। वहाँ अपने असंस्कारित जीवन का प्रदर्शन किया। उसकी बातों को सुनकर पड़ोसी के परिवार के सदस्य लड़ने लगे। एक घर में आग लगायी। फिर दूसरे घर में पहुँची। दिन में कई घरों में पहुँच कर सब के वहाँ लड़ाई- झगड़े करा दिये और शाम को अपने घर में वापिस पहुँच गई। यह उसका प्रतिदिन का कार्यक्रम बन गया।

असंस्कारित जीवन का कितना खराब प्रदर्शन है। नागरिक परेशान हो गये। यह क्या तमाशा है ? वह करोड़पति की माता कहलाती है। उनके घर की माता है। हमारे घर मे आग लगाने वाली कौन होती है ? आग लगाने वाला व्यक्ति बहुत बड़ा पापी होता है। बाहर में आग नहीं, जीवन में आग लगानेवाले, जीवन में क्लेश पैदा करनेवाले, समाज के अन्दर शांति की स्थिति को तोड़नेवाले, अशांति पैदा करनेवाले, राष्ट्र के अन्दर अशांति की ज्वाला सुलगानेवाले-ये सबके सब महापापियों की श्रेणी में आते हैं।

नागरिकों का शिष्टमंडल सेठ के पास पहुँचा। सेठ ने बड़ा सत्कार किया। शिष्टमण्डल सोच रहा था कि यह करोड़पति सेठ है। हमें अनादर की दृष्टि से देखेगा। लेकिन सेठ के बर्ताव को बिल्कुल विपरीत पा रहे हैं। सेठ सम्मान कर रहा है हमारे जैसे का। यह सेठ पूंजी को महत्त्व नहीं दे रहा है। जीवन को महत्त्व दे रहा है। हमारे जैसे निर्धन व्यक्तियों के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित कर रहा है, जैसे कि अपने वर्ग

के, मुकाबले के व्यक्ति क्यों सम्मान देते हों।

इस दृष्टि से सेठ का जीवन संस्कारित जीवन है। शिष्टमंडल ने अपनी बात रखी और कहा - आपकी मातेश्वरी को आप कुछ अनुशासन में रखिए। यह हमारे घरों में आग लगाकर हम सबके जीवन को विषाक्त कर रही है। सेठ ने कहा - जितने सम्भव प्रयत्न थे, वे सब मैंने कर लिये, लेकिन मेरे प्रयत्न सफल नहीं हुए। आपसे मेरा निवेदन है, आप ही कोई उपाय सुझायें और मेरी मातेश्वरी को समझा दें। उनके जीवन को संस्कारित बना दें, तो मैं आपका अहसान नहीं भूलूंगा। शिष्टमण्डल उस अस्सी वर्ष की वृद्धा के पास पहुँचा। अनेक तरह की शास्त्रीय बातों को रखते हुए समझाने की कोशिश की। बुढ़िया को सब बातें तो जंची, लेकिन उसने उत्तर दिया - आपकी सब बातें अच्छी हैं, भली हैं, मैं समझती हूँ, लेकिन झगड़ा किये बगैर मुझे खाना हजम नहीं होता है।

शिष्टमण्डल ने सोचा कि अब वृद्धावस्था के अन्दर संस्कार देना बड़ा कठिन है। उस वृद्धा को कहा - मातेश्वरी ! यदि लड़ाई झगड़ा किये बिना आप का अन्न हजम नहीं होता है, तो हम आपके उस रास्ते को खुला रखकर बाकी दरवाजे बन्द कर देते हैं। आप लड़ाई करने के लिए घर-घर के अन्दर पहुँचती हैं। आपको श्रम होता है। हम सब मिलकर आपके लिए एक कमरे का इन्तजाम कर देते हैं। उसी में आप गद्दी तकिये पर विराजकर बैठ जायें और बारी बारी से एक व्यक्ति आपके पास पहुँच जाया करेगा और जितनी आपको लड़ाई करनी है, दिनभर आप उस व्यक्ति से करते रहें। तो उसने कहा कि हाँ! यह बात मुझे मंजूर है, क्योंकि कोई लड़ने वाला नहीं हो, तो बिना लड़ाई किये मुझे शान्ति मिलने वाली नहीं है।

शिष्टमण्डल ने सेठ से निवेदन किया कि अब समस्या का कुछ हल हो चुका है। आपके घर के अन्दर काफी सदस्य हैं और एक-एक सदस्य की बारी बांध दी जाये और एक कमरे के अन्दर गादी तकिये डालकर बुढ़िया को बिठा दीजिए। यह आपके घर की अशान्ति एक ही कमरे में रहेगी और नगर में भी नहीं फैलेगी। सेठ ने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, लेकिन मेरे परिवार के सदस्यों से यह समस्या हल

होने वाली नहीं है। शिष्टमण्डल ने कहा कि क्यों ? तो कहा कि परिवार के सदस्यों को मैंने संस्कार दे दिये हैं कि माँ चाहे कितना ही कुछ कहे, हमको चुप्पी साध लेनी है और कुछ भी उत्तर नहीं देना है। जैसे बच्चे की बात को सुनकर हंसते हैं, उसी तरह से इनकी बात को सुनकर हंस लेना है। तो मेरे परिवार के सदस्य उससे लड़ाई नहीं करेंगे। उसकी बात को सुनकर हंसते रहेंगे। तो इससे बुढ़िया की आग शान्त नहीं होगी और फिर वह कमरे से बाहर निकलकर आपके घरों में पहुँचेगी, तो आपकी समस्या का हल कैसे होगा ?

शिष्ट मण्डल ने सोचा वह भी ठीक है। सेठ के इस प्रकार संस्कारित जीवन का कुछ नमूना देखकर शिष्टमण्डल ने सोच लिया कि यह सारे नगर की गाता हो जानी चाहिए, क्योंकि इसके पुत्र के इतने संस्कार हैं कि हमारे साथ सुमति के साथ व्यवहार कर रहा है, तो वह उत्तरदायित्व हम सबका है। इस दृष्टिकोण से उस शिष्टमण्डल ने यह निर्णय किया कि सेठ के घर के सदस्यों को छोड़कर गाँव के जितने सदस्य हैं, उनके प्रत्येक घर से एक व्यक्ति की बारी बांध दी जाये। उन्होंने गाँव के अन्दर उसी ढंग का ऐलान करवाया। वह गाँव विषमताओं की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला नहीं था। वह परिवार के रूप में गाँव था, सब की सनता की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला गाँव था।

आजकल ग्राम पंचायतों की व्यवस्था करने के लिए जरूर कुछ किया जा रहा है, लेकिन आज की स्थिति में वस्तुतः ग्राम को परिवार समझने की दृष्टि अभी मानव में नहीं आ रही है। वह चाहे किसी भी पोस्ट पर क्यों न पहुँच जाये, उनके अन्दर गाँव की स्थिति के संस्कार नहीं बन पा रहे हैं। लेकिन उसका कुछ दृश्य इस तरह से हमारे सामने आता है।

संयोग से एक संस्कारित कन्या, जो कि बचपन से अपने जीवन के अन्दर जीवन के स्वरूप को समझकर जीवन को संस्कारित करके चलने वाली थी, वह सुसराल में पहुँची। सास और श्वसुर को नमस्कार भी किया और उसके परिणाम हेतु शुभ आशीर्वाद चाहा था। उसने अपने प्रफुल्लित नयनों से सास की आकृति को देखा और सोचने लगी कि मेरी सासूजी के मुँह से आज मेरे लिए सुन्दर आशीर्वाद

आऊँगा, क्योंकि मैं इस घर के अन्दर नवीन पुत्रवधू के रूप में, परिवार के नवीन सदस्य के रूप में उपस्थित हुई हूँ। लेकिन उस कन्या ने देखा सासूजी के मुँह से आशीर्वाद के कोई वचन नहीं निकल रहे थे, बल्कि आकृति में थोड़ी सी म्लानता थी।

उस चतुर कन्या, मनोविज्ञान की ज्ञाता, जीवन को संस्कारित करने वाली कन्या, ने सासूजी से प्रश्न किया कि सासूजी! क्या आज मेरा इस परिवार के सदस्य के रूप में आना आपको अच्छा नहीं लग रहा है ? मैं यह जानना चाहती हूँ कि किसी भी परिवार में कोई भी नवीन सदस्य यदि प्रविष्ट होता है, तो परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन में प्रफुल्लता आये बिना नहीं रहती। लेकिन आज मैं इसके विपरीत देख रही हूँ, इसका क्या कारण है ? आपकी उदासी का क्या कारण है? आप स्पष्ट बताये ? उसने जो आजकल की प्रचलित प्रथा थी, उसको भी हटा दिया। सासूजी ने पुत्रवधू के वचनों को गहत्व दिया और कहा कि बेटी जी! तुम्हारे आने से उतनी ही प्रफुल्लित हूँ, जितनी कि होनी चाहिए और जो चिन्ता का रूप आप देख रही हो, वह तुम्हारे कारण नहीं है, उसका अन्य कारण है। बहू ने पूछा कि वह कौन सा कारण है? जब मैं परिवार की सदस्या बनी हूँ, तो परिवार के ऊपर आने वाली हर विपत्ति में भी हाथ बंटाना मेरा कर्तव्य है। कौनसी ऐसी कुमति का साम्राज्य छा गया, जिसने आपके मन को, जो कि कोमल कमल के समान है, नुरझा दिया। आप स्पष्ट कहें। मेरे से बन सकेगा, तो मैं उसे हल करूंगी।

सासूजी ने स्पष्ट शब्दों में सारा वृतान्त सुनाया कि करोड़पति सेठ के यहाँ इस तरह से असंस्कारित वृद्धा माता का गाँव के लोगों के साथ व्यवहार है और वहाँ बारी-बारी से प्रत्येक परिवार से एक-एक सदस्य के रोज जाने का निर्णय हुआ है। मेरे घर के सदस्य के जाने का आज प्रसंग है और वह बुढ़िया चाहे 80 वर्ष की है, लेकिन उसका जीवन मिट्टी के ढेले से भी गया बीता है और इतने अपशब्द वह परिवार के लिए प्रयोग करेगी कि जो आज हमको अभीष्ट नहीं होगा। हम चाहते हैं कि आज तुम्हारी सरीखी संस्कारित कन्या हमारे परिवार में आयी

और वह हमारे परिवार के लिए मंगलमय है और हमारे परिवार के लिए अमंगल सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं हो, इस भावना से मेरे मन में ग्लानि आ रही है कि मैं क्या करूं।

इस बात को सुनकर वह कन्या, जो नवीन पुत्रवधू के रूप में परिवार में उपस्थित हुई, उसके जीवन के अन्दर उच्च जीवन के संस्कार थे और अपने जीवन को मांजने की दृष्टि से वह चल रही थी और सुमति की पाठशाला में भी वह प्रवेश पा चुकी थी, ने प्रफुल्लित नयनों के साथ मधुर स्वर में कहा सासूजी! यह कार्य जितना आपका है, उतना ही मेरा भी है। आप चिन्ता मत कीजिए। मेरे लिए आप मंगल कामना करती हैं, यह मेरे सौभाग्य की बात है, लेकिन मेरा मंगल मेरे हाथ में है। मैं अपने जीवन में सुमति और सुगति के साथ जीवन के संस्कारों को लेकर चल रही हूँ। इसलिए मेरा कोई अमंगल होने वाला नहीं है। आप इस विषय में निश्चिंत रहिए और यदि आपके घर की बारी है, तो आज मेरा ही नम्बर लगा दिया जावे।

बन्धुओं ! मैं क्या बताऊँ ! कहाँ एक 80 वर्ष की बुढ़िया और कहाँ एक तरुणी, जो कि नव पुत्रवधू के रूप में परिवार में प्रवेश करती है और अमंगलकारी शब्दों को मंगल में परिणत करने के लिए कैसी भावना व्यक्त कर रही है। आप थोड़ा अपने जीवन को टटोलें और प्रश्न को हल करने के लिए अपने आपको थोड़ा सा तैयार कीजिए।

(कथा के आगे का अंश अगले प्रवचन में चालू है। कृपया प्रवचन संख्या 3 देखें। -सम्पादक)

लाल भवन 21 जुलाई 1972

❖ ❖ ❖

संस्कारी जीवन विश्व उपवन का मधुर सुवास से भरा वह पुष्प है, जो प्रतिपल चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध फैलाता है।

❖ ❖ ❖

विन्नाणेण समागम्म धम्म साहणमिच्छिउं

विवेक ज्ञान से ही धर्म के साधनों का निर्णय हो सकता है।

-उत्तराध्ययन सूत्र

❖ ❖ ❖

जीवन का स्वरूप

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो।
पद्म प्रभु नाम तिहारो ।
जदपि धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ट जमारो ।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो ।

यह पद्म प्रभु की प्रार्थना है। प्रार्थना की कड़ियों में प्रभु के नाम को पावन की संज्ञा दी है। ऐसे तो पद्म नाम व्यक्तियों का हो सकता है, किन्तु कवि ने जिस संज्ञा वाचक शब्द को कविता से समन्वित किया है, उसका आशय है कि उनका नाम पावन और पवित्र है। पतितों का उद्धार करने वाला है। पतित कौन हैं ? कवि ने धीवर, भील और कसाई की ओर संकेत किया है। आप जानते हैं इन लोगों का धन्धा क्या है ? पापयुक्त है। ये पाप युक्त जीवन बिताने वाले होते हैं। वे भी हिंसा का परित्याग करके यदि आपके नाम का स्मरण करें, तो उनका भी उद्धार हो जाये।

कवि ने इसकी लम्बी चौड़ी सूची दी है। गौ की हत्या करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, स्त्री की हत्या करने वाला। ये बड़ी हत्याएँ मानी गयी हैं, इन हत्याओं को करने वाले यदि आपके नाम की स्तुति को समझ लेते, तो ये भी अपने जीवन का उद्धार कर पाते।

शब्द रचना की दृष्टि से अर्थ सरल सा झलक रहा है, लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये, तो इन शब्दों के अन्दर गहनता है। वह गहनता तर्क के साथ व्यक्त की जाती है। आज का युग तर्कप्रधान युग है। सिर्फ आस्था से आज के युग का काम चलने वाला नहीं है।

जब मानव यह सुनता है कि प्रभु का नाम पावन है और पतित का उद्धार करने वाला है, तो सहज ही एक तर्क पैदा होगा कि यह पापिष्ठ जीवन से सरलता से छुटकारा पाने का उपाय बन गया। दिन भर कितने ही पाप करते रहो, दुनिया-भर की लूट-खसोट करते रहो, दुनिया को सताने वाले जितने कार्य बन सके, किये जायें और सन्ध्या के समय प्रभु के नाम का स्मरण कर लिया जाये, तो हमारे सारे कुकृत्य नष्ट हो जायेंगे। यह कितना सस्ता उपाय है ? फिर अन्य किसी उपाय की आवश्यकता ही नहीं रहती है।

नाम लेना सरल है। मुँह जुबान हिले, हाथ में माला लेकर फिरे, इतना सरल अर्थ समझ कर व्यक्ति इसको प्रमुखता देता है, तो यह इसका सरल अर्थ नहीं है। शब्द वर्ण से बनते हैं। यह तो एक दृष्टि से जड़ तत्त्व है। इसके अन्दर पवित्रता का आरोप करें या अपवित्रता का, दरअसल इन शब्दों के माध्यम से वह अर्थ निकाला जा सकता है।

शब्दों के साथ साथ प्रभु का स्मरण होता है। शब्दों का उच्चारण करते हैं, तो भगवान का अत्यन्त उज्ज्वल जीवन सामने आता है और उसका जब मन के ऊपर स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड़ने का प्रसंग आता है, तो इससे मन में भी पवित्रता का संचार होता है।

हृदय में भगवान का पावन नाम लेते हैं, तो वह मन, जिह्वा भी और अंतःकरण भी पवित्र हो जाता है। यह मन रूपी कपड़ा सांसारिक कार्यों से दुर्गन्ध-युक्त बना हुआ है। उसमें झूठ, छल, प्रपंच और न मालूम कितनी ही बुरी वस्तुएँ क्रीड़ा कर रही हैं और सारे मन रूपी कपड़े को गंदा बना रही हैं। इस गन्दे कपड़े के ऊपर यदि आप पद्म प्रभु भगवान के नाम का पवित्र अर्थ दो क्षण के लिए ही टिका लेंगे, तो आपके मन में सुगन्ध रूपी आध्यात्मिक शान्ति का प्रभाव बना रहेगा। जितने क्षण आपका ध्यान उस प्रभु के सीधे स्वरूप की ओर होगा, उस

समय तक वहाँ बाहर की वस्तुएं मंद पड़ेंगी और कुसंस्कार नष्ट हो जायेंगे तथा वह स्थिति निरन्तर मन की बनी रही, तो सारी दुर्गन्ध साफ होकर उसका जीवन पावन और पवित्र बन जायेगा।

जो लोग समझते हैं कि दिन भर पाप करें और शाम को भगवान का नाम ले लें, तो उन्हें पाप से छुट्टी मिल जायेगी। उन लोगों के मन में यह चीज बैठ जाये कि शाम को भगवान का नाम लेने से दिन भर के पाप नष्ट हो जायेंगे, तो इस विश्वास से जीवन में पुनित संस्कारों का आरोपन नहीं होगा। हमारा सारा जीवन वीतराग देव की वाणी के अनुसार सुसंस्कारित हो, तभी वह सम्भव है। उस जीवन को सुसंस्कारित करने के लिए हम अपने जीवन के पापों को छिपायें नहीं। दुर्गन्ध को छिपाने की कोशिश न करें, वरन् उसे बाहर फेंकें। दुर्गन्ध को सूर्य की किरणों के सामने बिखेर दें। दुर्गन्ध उड़ जायेगी और निखालिस तत्त्व उसका बन जायेगा।

गंदगी को दबाओ मत

आप जानते हैं, व्यापारी जब अपनी दुकान पर बैठता है और जब कचरा निकालने का प्रसंग आता है, तो वह रुपया पैसा नोट और कोई बढ़िया चीज है, तो जाजम से झटक-झटक कर उनको उठाकर तिजोरी में रखेगा और कचरे को झाड़कर, बुहार कर, दुकान से साफ करके बाहर फेंकेगा। यह तो प्रचलित पद्धति है। लेकिन कदाचित् किसी व्यापारी के दिल में यह आ जाये कि सोने चांदी, रुपये नोट हैं, उनको तो उठाकर बाजार में फेंक दें और जितना कूड़ा करकट है, उसको इकट्ठा करके, उसको या तो जाजम के नीचे दबा दें या तिजोरी में रख दें। यदि ऐसा वह करने लग जाये, तो उस व्यापारी को क्या कहेंगे ? बेवकूफ और मूर्ख ही तो कहेंगे।

हम भी इस जीवन की दुकान पर बैठे हैं। क्या हमने अपने जीवन के स्वरूप को समझा है? प्रश्न यही है, ''किं जीवनम्'' जीवन क्या है ? क्या इस प्रश्न पर आपने कुछ चिन्तन किया है ? इस जीवन

की दुकान पर बैठकर आप कूड़े करकट कचरे को बाहर फेंक रहे हैं या उसको जाजम के कोने के नीचे दबा रहे हैं ? तात्पर्य यह है कि इस जीवन के अन्दर कूड़ा करकट गंदगी भरी हुई है। इस गंदगी को इन्सान बाहर फेंकना नहीं चाहता है। नयी नयी गंदगी पैदा हो जाती है, तो भी उसको छिपाने की कोशिश करता है और सद्गुण रूपी बहुमूल्य रत्नों को बाहर फेंकने की कोशिश करता है। जीवन के अन्दर पाप की वृत्ति आती, मनुष्य ने पाप किया और पाप करना स्वाभाविक भी है, परन्तु पाप करने के बाद में पाप को पाप कहने की ताकत भी उसकी जबान में नहीं आती है। प्रकारान्तर से वह पाप प्रकट भी हो जाये, तो भी मनुष्य चाहेगा कि पाप प्रकट न हो और इस पाप को छिपा कर तथा दबाकर रखता रहूँ। ऊपर से लेबल ऐसा बना देता है कि दुनिया मुझे भला आदमी समझती रहे।

इस पाप रूपी दुर्गुण को, गंदगी को जीवन रूपी जाजम के कोने के नीचे दबा रखता है और कदाचित् किसी संयोग से शुभ काम बन जाता है, मार्ग में जाते हुए किसी गिरते हुए प्राणी को सहारा देकर बचा लेता है, तो वह मन में फूला नहीं समाता है और सारी जगह बात कहता फिरता है कि मैंने ऐसा किया और जिस व्यक्ति को सहारा दिया, यदि वह व्यक्ति कभी कोई बात कहेगा, तो वह उलट कर कहेगा कि मैंने तुम्हें गिरते हुए को बचाया था। वह दुनिया भर में उसका ढिंढोरा पीटेगा और अपनी गंदगी को नीचे दबायेगा।

अगर व्यक्ति सद्गुण रूपी शक्तियों को तिजोरी में बन्द रखता है और वर्तमान काल में और अनादि काल में जो उसने पाप किये हैं, उन्हें प्रकट करता है तथा प्रभु के नाम का श्रवण करता है, तो वह उसके लिये पावन करने वाला बन जायेगा। यदि ऐसा नहीं किया, तो प्रभु का नाम हजार हजार बार लें, लाखों करोड़ों बार लें, वह प्रभु का नाम पवित्र पावन करने वाला नहीं बनेगा। कुछ पवित्र कड़ियों को जीवन के साथ जोड़ें, और जीवन को सामने रखकर इसके स्वरूप को समझने की कोशिश करें तो यह सब सम्भव है।

प्रभु महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले जो उद्घोषण की, वह यह थी

असंखयं जीविय मा पमायए।

जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।

हे मानव ! तुम्हारा असंस्कारित जीवन है। प्रमाद में क्यों पड़े हो ? जीवन को इधर उधर क्यों भटका रहे हो? उसमें जीवन की झांकी जरूर रहती है। आप विचार करिए-असंस्कारित जीवन क्या है ? हमारा प्रश्न क्या है ? उस जीवन के साथ संस्कारित और असंस्कारित जीवन जुड़ा हुआ है। असंस्कारित जीवन की और संस्कारित जीवन की अनेक विद्वान परिभाषा करते हैं, तब जीवन को तोलने की कोशिश करते हैं, लेकिन वास्तव में जीवन की परिभाषा परिपूर्ण रूप से क्या है ? **"किं जीवनम्"** जीवन क्या है? कुछ विद्वान उत्तर देते हैं कि **"दोष विवर्जितम् यद् तज्जीवनम्"।**

दोष से विवर्जित है, वही जीवन है। जो दोष से रहित है, वह जीवन है। इस सामान्य परिभाषा में दार्शनिक दृष्टि से अतिव्याप्ति दोष की संभावना है। यद्यपि अतिव्याप्ति दोष, अव्याप्ति दोष और असंभव दोष, यह तीनों न्यायिक क्षेत्र के, दर्शन क्षेत्र के लक्षण हैं।

यह दार्शनिक सभा नहीं है। यह तो धर्म जिज्ञासु सभा है। यद्यपि धर्म सभाओं के बीच में ये दर्शन सम्बन्धी बातें थोड़ी कठिन पड़ती हैं, परन्तु फिर भी आज का जो समाज है, आज का जो मानव है, वह इस कठिन तत्त्व को भी ग्रहण करने का प्रयास करता है। आज मनुष्य के मस्तिष्क का विकास इतना हुआ है कि वह बारीक से बारीक चीज को समझने का प्रयास करता है। इसलिए जब तक आप जीवन की बारीकी को न समझेंगे, तब तक उसके निखालिस तत्त्व को नहीं समझ पायेंगे।

जीवन का लक्षण

आपका प्रश्न, अन्यथा तो मेरा प्रश्न है **"किं जीवनम्"** जीवन क्या है? इसका लक्षण बताया जायेगा कि अमुक तरह का जीवन अमुक तरह के जीवन का लक्षण है। वह लक्षण यदि दोषयुक्त बन गया,

तो सही लक्षण नहीं समझा जा सकता और यदि दोष रहित लक्षण है, तो वह सही लक्षण है। उदाहरण स्वरूप जीव का लक्षण लें यदि कोई पूछे कि जीव का लक्षण क्या है? तो उसका उत्तर है कि जीव का लक्षण उपयोग है ''**जीवो उवओग- लक्खणो**'' तो यह शुद्ध लक्षण है, क्योंकि इससे रहित कोई जीव नहीं होता तथा सभी जीवों में उपयोग लक्षण है।

इसके विपरीत जीव का लक्षण यह माना जाये कि पंचेन्द्रिय हो, वह जीव है, तो यह लक्षण सभी जीवों में नहीं जा सकता। पंचेन्द्रिय से आप क्या समझते हैं ? पाँच इन्द्रियाँ ये हैं आँख, नाक, कान, मुँह और शरीर। यदि हम कहें कि पाँच इन्द्रियाँ वाला ही जीव है, तो जिसके चार इन्द्रियाँ हैं, तीन इन्द्रियाँ हैं, क्या वह जीव नहीं है ? दो इन्द्रियाँ हैं, तो क्या वह जीव नहीं ? एक इन्द्रिय है, तो क्या वह जीव नहीं ? यह पंचेन्द्रिय लक्षण करना, जीव मात्र का पंचेन्द्रिय लक्षण बताना यह जिस प्रकार दोषपूर्ण है उसी प्रकार जीवन के विषय में एक विद्वान ने कहा है ''**दोष विवर्जितं यद् तद् जीवनम्**'' दोष से रहित है, वह जीवन है।

मैं यहाँ आपको बतला रहा हूँ कि जीवन का सही लक्षण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में जब यह कहा जाये ''**दोष विवर्जितं यद् तज्जीवनम्**'' इस पर यदि उपर्युक्त तरीके से विचार करें, तो यह लक्षण कहाँ तक शुद्ध है ? यह देखना है। इसकी परिभाषा के साथ आपको थोड़ा सा बारीकी से चिन्तन करा रहा हूँ। यह लक्षण शुद्ध नहीं है। 'दोषविवर्जितं यत् तद् जीवनम्-दोष रहित जीवन ने यह लक्षण जा सकता है, पर साथ ही जीवन रहित तत्व में भी यह चला जाता है। इस परिभाषा के अनुसार यदि दोष रहित परमाणु हो, तो वह भी जीवन कहलाएगा। शास्त्रीय दृष्टि से धर्मास्तिकाय दोष रहित है, तो उसको भी जीवन कहना पड़ेगा और धर्मास्तिकाय में जीवन कहाँ? तो यहाँ पर घोटाला हो जायेगा। इसलिए जीवन की उपर्युक्त परिभाषा शुद्ध नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय भी अपने आपमें दोष रहित है। जीवन की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार इन्हें भी जीवन समझ लिया जायेगा-पर वे तो जड़ हैं। अतः यह अतिव्याप्ति दोषयुक्त लक्षण बन जाता है। इसमें जीवन के पूरे लक्षण नहीं आ रहे हैं।